International Journal of Arts, Humanities and Social Studies

ISSN Print: 2664-8652
ISSN Online: 2664-8660
Impact Factor: RJIF 8
IJAHSS 2023; 5(1): 95-97
www.socialstudiesjournal.com
Received: 08-04-2023
Accepted: 19-05-2023

डॉ. अर्चना कुमारी
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), एच० पी० एस० महाविद्यालय, मधेपुर, (मधुबनी), ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अर्चना कुमारी
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), एच० पी० एस० महाविद्यालय, मधेपुर, (मधुबनी), ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

भारतीय समाज और स्त्री–अस्मिता

डॉ. अर्चना कुमारी

DOI: https://doi.org/10.33545/26648652.2023.v5.i1b.50

सारांश
अस्मिता का तात्पर्य स्वयं की पहचान से है। चाहे वह दलित अस्मिता हो, स्त्री– अस्मिता हो या किसी भी वर्ग, समुदाय और जाति की अस्मिता हो। इन अस्मिताओं की बात यदि चलती है तो इसके पीछे यह छिपा हुआ है कि ये वर्ग कहीं न कहीं हासिए पर है। मानवीय आदर्श, स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व, प्रेम आदि का संबंध मनुष्य की अस्मिता से जुड़ा हुआ है। ये सारी चीजें जब समाज से नदारत होने लगती है तब मनुष्य अपनी अस्मिता, तलाशने लगता है। वह सोचता है कि आखिर हम हैं क्या? समाज के लिए हम कितने उपयोगी हैं? समाज हमें क्या समझता है? समाज के निर्माण में जो हमारा योगदान है उसके एवज में नितिनियंता या सत्तासीन लोग हमें कौन सा स्थान देते हैं? इन सारे प्रश्नों का सम्बन्ध हासिए पर ढकेल दिए गए मनुष्य की अस्मिता से जुड़ा हुआ है।

कूटशब्द : मनुष्य, स्वतंत्र, आन्दोलन, चरित्र, इतिहास, बदलाव।

प्रस्तावना
स्त्रियों का अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। पितृसत्ता अगर स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रखने के लिए तमाम तरह के बंधनों में जकड़ देने का नाम है तो स्त्री – आस्मिता उन बंधनों से मुक्त होने के लिए विद्रोह करने और स्त्री–पुरुष की समानता के लिए संघर्ष करने का नाम है।

आलेख (Main thrust)
स्त्री अस्मिता आज पूरे विश्व में ध्रुवीकरण का रूप लेती जा रही है। इसे केन्द्र में लाने का श्रेय स्त्रीवादी विमर्श तथा साथ ही साथ दृश्य माध्यमों को बहुत अधिक जाता है। स्त्री अस्मिता को वसुधा में इस प्रकार परिभाषित किया गया है– ''आखिर स्त्री अस्मिता है क्या? दरअसल यह पुरूष के समान स्त्री का समान अधिकार, स्त्री के प्रति विवेकमूलक दृष्टिकोण तथा स्त्री द्वारा पुरूष के वर्चस्व का प्रतिरोध है। औरत का केवल स्वतंत्र होकर निर्णय ले सकना या आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाना ही उसकी अस्मिता नहीं है। सही मायनों में स्त्री अस्मिता का अर्थ होगा स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव जिसमें स्त्री का खुद का दृष्टिकोण भी शामिल है।''
इस संदर्भ में जगदीश्वर चतुर्वेदी का कथन है – ''भारतीय समाज में आज भी अधिकांश स्त्रियाँ पराधीनता में जी रही है। कहने को उन्हें संवैधानिक तौर पर अनेक अधिकार मिल चुके हैं। किंतु स्त्री की वास्तविक दुनिया अभी भी कैद और वंदिशों से घिरी है। स्त्री–अस्मिता को जानने की पहली शर्त है कि उन स्थितियों को जाने जिनमें स्त्री कैद है। स्त्री को कैद से मुक्ति दिलाने के लिए सिर्फ सहानुभूति से काम चलने वाला नहीं है। इसके लिए व्यावहारिक और अकादमिक दोनों ही स्तरों पर जंग लड़ी जानी चाहिए। जो लोग सोचते हैं कि सिर्फ आन्दोलन करके जंग जीती जा सकती है, वे गलत सोचते हैं। स्त्री की मुक्ति के लिए पढ़ाई और लड़ाई का एक साथ चलना बेहद जरूरी है। स्त्री की जंग जब तक वैचारिक स्तर पर नहीं जीती जाती है तब तक स्त्री मुक्ति का सपना साकार नहीं होगा।''
भारतीय समाज में स्त्री को सहधर्मिणी, अर्धांगी आदि कहा गया है, अर्थात् मुनष्य की सफलता में आधा हिस्सा उनका भी है। लेकिन पुरूषवादी मानसिकता ने उसकी पहचान ही मिटाने में अपना गर्व समझा। प्राचीन काल से लेकर आज तक स्त्रियों का शोषण जारी है भले ही उसके रूप भिन्न हो गए हों। मध्यकाल के दो महत्वपूर्ण कवियों की दृष्टि एक जैसी दिखाई पड़ती है चाहे वे प्रगतिशील विचारक कबीर हो या परंपरावादी तुलसी। कबीर अपनी सारी प्रगतिशीलता के बावजूद स्त्रीवादी सोच में पीछे रह जाते हैं। वे कहते हैं –

नारी कुंड नरक का बिरला थंभै बाग।
कोई साधू जन ऊबरै, सब जग मूवा लाग।।

तुलसी ''ढोल गँवार शुद्र पुश नारी'' तक ही सीमित नहीं रहते। वे आगे भी लिखते हैं :–

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं
अवगुण आठ सदा उर रहही
साहस, अनृत चपलता माया
भय अविवेक असोच अदाया।

स्त्री– अस्मिता का यह नकार और उसके स्वत्व का मर्दन पुरूष – सत्ता ने इस सीमा तक पहुँचा दिया कि यह सब स्वाभाविक लगने लगा था। आधुनिक काल में भी मैथिलीशरण गुप्त की दृष्टि –

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।''

तक ही जाती है :–
पुरुषवादी भारतीय समाज में स्त्री–अस्मिता का सीधा संबंध स्त्री मुक्ति से है। वास्तव में पुरूष सदियों से औरत की स्वतंत्रता से डरता आ रहा है। इसलिए हमेशा उसको मजबूर कर तोड़–मरोड़कर अपने अधिकार में रखकर मनचाहे साँचे में ढाल दिया। ''सीमोन द बोउआर' कहती है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे बना दिया जाता है।' समूची भारतीय चिंतन परम्परा में स्त्री डर की वस्तु है, भोग की वस्तु है। उसे अबला, गुलाम, माया इत्यादि नामों से पुकार कर अपमानित किया गया है। पुरुष का दंभ अपनी पूरी ताकत के साथ नारी का शोषण और दमन करता रहा और अपनी इस अमानुषिक प्रवृत्ति पर बनावटी हँसी बिखेरता रहा। स्त्री और पुरुष के बीच सहज भाव न पनप पाए इसीलिए कह दिया गया कि स्त्री रहस्य की वस्तु है। त्रिया का चरित्र देवता भी नहीं जान पाए तो मनुष्य क्या समझे।

''नारी सत्यम् शिवम् सुन्दरम् बाकि सब झूठा है।
कदम–कदम पर इस अबला को हर किसी ने लूटा है।।

पुरूष प्रधान समाज में नारी की स्थिति को दर्शाने के प्रयास उपन्यासों एवं कहानियों में बराबर होते आए हैं, कुछ नारी लेखकों ने इस दिशा में विशेष प्रयास किए हैं। उस वर्ग से संबंधित होने के कारण वे नारी मन को अधिक प्रामाणिक ढंग से व्यक्त कर सकी हैं। बीसवीं शताब्दि के आठवें दशक में महिला लेखिकाओं ने 'स्त्री–विमर्श' को अपनी रचनाओं में अधिक उभारने का प्रयास किया। उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल, नमिता सिंह, प्रभा खेतान इत्यादि अनेक नाम उभरे तथा इनकी रचनाओं ने पाठकों का ध्यान भी आकृष्ट किया। नारी को मात्र भोग–विलास की वस्तु समझने वाली मानसिकता का विरोध भी मुखर रूप में किया है।
समाज में बेटे के जन्म में खुशियाँ मनाई जाती है, जबकि बेटी का जन्म होने पर मायूसी छा जाती है। बेटा–बेटी में जो यह फर्क किया जाता है वह भी स्त्री को कचोटता है। रामदरश मिश्र की कहानी 'थकी हुई सुबह' की लक्ष्मी कहती है ''क्या स्त्रियों को कोई दूसरा ईश्वर पैदा करता है या यहाँ स्त्री–पुरूष के लिए दो नियम है।''
संविधान और कानून में बराबरी का दर्जा दिए जाने के बावजूद नारी को अपनी मुक्ति और राजनीति एवं समाज में उचित स्थान पाने के लिए तब तक संघर्ष करना होगा, जब तक पुरूष प्रधान समाज को यह एहसास नहीं कराया जाता कि स्त्री भी उन्हीं की तरह हाड़–मांश से युक्त एक बुद्धिमान प्राणी है। शारीरिक संरचना में कुछ प्राकृतिक अंतरों की वहज से उसकी कार्यक्षमता और बौद्धिक क्षमता पर सवाल नहीं उठाना चाहिए कि वह हर क्षेत्र में पुरूष की बाराबरी करने में सक्षम नहीं है। पंचायत चुनावों में महिला सीट आरक्षित होने के कारण स्त्रियाँ चुनाव लड़ती है, चुनाव जीतने पर उनके पति की सत्ता चलती है। पत्नी की भूमिका केवल रबर स्टाम्प की रहती है। स्त्रियों को आज भी अपने गर्भ पर अधिकार नहीं है। बेटी की माँ बनना उनके लिए कष्टप्रद है। जबकि बेटे की माँ होने में गौरव–ही–गौरव है। वे तब तक सन्तानें जन्मने को विवश है जब तक वे परिवार को एक पुत्र न दे दे।
भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् तथा आधुनिक शिक्षा के परिणाम स्वरूप धीरे–धीरे नारी की स्थिति में परिवर्तन आ रहे हैं। नारी जो पुरूष पर पूर्णतः आश्रित थी, आत्मनिर्भर होकर अपनी स्थिति को मजबूत कर रही हैं। उसकी मानसिकता धीरे–धीरे परिवर्तित हो रही है। लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार– ''अभी तक व्यक्तित्व की विराटता एवं विशिष्टता का जो अधिकार पुरूषों के पास था वह सही अर्थों में नारियों तक भी पहुँचा।'' भारतीय समाज में बहुतेरे क्षेत्रों में महिला विकास में प्रगति के बावजूद महिलाओं के मामले में दयनीय है। वह आज भी पुरूषवादी अहं और शोषण के चक्र में फॅसी है और सभी मोर्चों पर अन्याय उत्पीड़न की शिकार है। हालत यहाँ तक सोचनीय है कि वह अपने बारे में निर्णय ले पाने में भी असमर्थ है परंतु फिर भी भारतीय कर्मठ महिलाएँ सुन्दरी, कवयित्री, लेखिका, सिनेकर्मी, संगीतज्ञ, खिलाड़ी, कुश्ती, जिमनास्टिक, अंतरीक्ष इत्यादि सेवाओं में आज प्रतिस्पर्धा के दृष्टिकोण से संसार में अव्वल दर्जे का नाम कमा रही है। संघर्ष से सफलता तक के मुश्किल रास्ते लगातार तय कर रही है। इन्हीं संघर्षरत, जुझारू, मेहनतकश और संवेदनशील स्त्रियों के बूते हम गर्व से कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी महिलाओं की है।
यह सत्य है कि तमाम बाधाओं को पार करती हुई नारी बुलंदियों को चूमा है। घर और बाहर दोनों जगह अपने को स्थापित किया है। लेकिन. क्या वास्तव में इतना होने के बावजूद उनकी समस्याएँ खत्म हो गई है? क्या अब आधुनिक संदर्भ में स्त्री–अस्मिता को कोई खतरा नहीं है? ऐसा नहीं है। परेशानियाँ और उनके अस्तित्व का खतरा आज भी है, सिर्फ स्वरूप बदल गए हैं। आज भले ही पर्दा प्रथा, बाल–विवाह, सतीप्रथा समाप्त हो गए हैं। औरतें दफ्तरों में काम करने लगी हैं, अकेले आने–जाने लगी हैं, किंतु शोषण बन्द नहीं हुआ है। तमाम कानूनों के बावजूद आज दहेज जारी है। ज्यों–ज्यों तकनीक और बाजार बढ़ा है, दहेज बढ़ा है। आज शिक्षित एवं सभ्य कहलाये जाने वाले परिवार भी दहेज रूपी दानव से अछूते नहीं हैं। गर्भ में कन्या है पता लगते ही उनके पतन के उपाय के बारे में सोचा जाने लगता है। विडम्बना ही है कि एक तरफ कन्या पूजनीय है तो दूसरी तरफ विध्वंसात्मक प्रवृत्ति अर्थात् कन्या भ्रूण हत्या। यदि वह जन्म भी लें तो पालते समय उसके साथ दुर्व्यव्हार की प्रवृत्ति अपनायी जाती है।
महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों को समाज के सामने लाने का श्रेय महिला पत्रकारों एवं लेखिकाओं को दिया जाना चाहिए। उन्होंने ही घर व कार्यक्षेत्र में महिलाओं पर होने वाले यौन उत्पीड़न को प्रकाश में लाने की पहल की है। नतीजतन आज कंपनियों ने भी स्त्रियों के हित में कार्य स्थितियों को काफी हदतक बदला है। मानवाधिकार संबंधी मामले की कवरेज के लिए आज महिला संवाददाताओं को प्राथमिकता दी जा रही है। उनका लेखन मुक्ति का मार्ग खोजती हुई आधुनिक स्त्री के जीवन के विविध पहलुओं को परत–दर–परत बड़ी बेबाकी से उजागर करती है। फिर चाहे वह व्यक्तित्व की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने की छटपटाहट हो या उसकी प्रतिक्रियावादी आक्रोश हो या स्वेच्छाचारी पति से किनारा करने का साहस हो या परम्परावादी रूढ़ियों को तोड़ने की आकुलता।

औरत जब अपने अन्दर संघर्ष का जज्बा उत्पन्न कर अत्याचार एवं अन्याय के आगे झुकने से मना कर देती है और जयशंकर प्रसाद के नाटक ध्रूवस्वामिनी की नायिका की भांति अपने कायर पति को चुनौति देती हुई कहती है कि ''यदि तुम मेरी, अपनी कुलमर्यादा की रक्षा नहीं कर सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते। मैं उपहार में दी जाने वाली शीतल मणि नहीं हूँ मुझमें रक्त की तरल लालिमा भी है। ''आधुनिक नारी भले ही कोई युगान्तकारी परिवर्तन न कर सके किंतु उसकी सोच तो बदली है। 'अपनी सलीबे' में नमिता सिंह ने साफ कहा है कि प्रबुद्ध नारियों को जन–जागरण का कार्य अवश्य करना चाहिए। भले ही वे समुद्र पर सेतु न बांधे, रावण मेघनाद को न मारें किंतु ऐसा करने की इच्छा तो व्यक्त करें – यही उसकी मुक्ति है, जिसका स्वागत किया जाना चाहिए। प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी कथाकारों की रचनाओं में इस 'सोच' एवं 'वैचारिकता' वाले नारी चरित्र गढ़े जा रहे हैं।

यह निर्विवाद सत्य है कि भारतीय समाज में पुरूष की तुलना में नारी अधिक पीड़ित, उपेक्षित, असहाय एवं हीन स्थिति में है। उसके विकास को पुरुष सहज रूप में स्वीकार नहीं करता। बराबरी की हकदार महिलाओं को आज भी दोयम दर्जा प्राप्त है। स्त्रियाँ दोहरी मानसिकता की जकड़न में छटपटा रही है।

किसी भी राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में नारी का योगदान बहुत महत्वपूर्ण होता है। यदि हम विश्व इतिहास पर दृष्टि डाले तो हमें पता चलता है कि संस्कृति की नींव डालने का श्रेय सर्वप्रथम नारी को हीं दिया जाता है। जिस तरह परिवार में नारी व पुरूष के कार्य व स्थान भिन्न होते हैं उसी तरह समाज में भी नारी और पुरुषों के कार्यों में भिन्नता पायी जाती है। भूतपूर्व राष्ट्रपति कलाम साहब का भी मानना है – ''देश मे कुल आवादी का 48 फीसदी स्त्रियाँ हैं, जरूरी हैं कि वे जागरूक बने, क्योंकि उनके विचार, कार्यशैली, मूल्य पद्धति बेहतर परिवार समाज और राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण है।''

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक नारी की स्थिति में विभिन्न परिवर्तन हुए हैं। जहाँ आदिकाल मे नारी उच्च पदस्थ, प्रतिष्ठित एवं माँ लक्ष्मी–सरस्वती का रूप थी, वहीं मध्यकाल एवं आधुनिक युग में आते–आते उसकी स्थिति बद्तर हो गई। नारी केवल पुरूष की अनुगामिनी मात्र बनकर समाज के हाशिए पर चली गई जो आज नये–नये सवालों के साथ उपस्थित होकर जिन्दगी और मौत से जुझते हुए इस स्वार्थी एवं पंगु समाज से हिसाब माँग रही है।

निष्कर्ष

नारी के व्यक्तित्व को पूर्ण अभिव्यक्ति मिले। इस कली को सुमन बनने के लिए सुअवसर मिले। नारी जब दृढ़ संकल्पित होती है तो श्री से दुर्गा, सती, धर्म की रक्षार्थ और देवी से महादेवी, महाकाली भी बन जाती है। महिला सशक्तिकरण की दिशा में महिला–पुरुष संघर्ष की समाप्ति एक मील का पत्थर साबित हो सकती है। इस संघर्ष की सकारात्मक, भागीदारी, संघर्ष सुलझाने तथा संघर्ष की समाप्ति पर शांति की स्थापना जैसे विषयों पर लिंग समानता के लिए समन्वित रूप से सक्रिय होकर काम करना अनिवार्य होगा।

संदर्भ

1. 'स्त्री संघर्ष का इतिहास' राधा कुमार, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2002।
2. 'स्त्री असमानता : एक विमर्श' गोपा जोशी, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 1977
3. 'स्त्री उपेक्षिता' : (सीमोन द वोउआर का हिन्दी अनुवाद), अनुवादक, प्रभा खेतान, हिन्दी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 1998।
4. प्रसाद के नाटकों में स्त्री– अस्मिता, डॉ. दीनानाथ – अनुभव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद – 2012।
5. भारतीय महिला आंदोलन : कल और आज – दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा।
6. हिन्दी साहित्य का तथ्यपरक वर्णन – ओंकार नाथ वर्मा (उपकार प्रकशन, आगरा)।
7. प्रतियोगिता साहित्य सीरीज (यू०जी०सी० नेट/जे०आर०एफ), डॉ० अशोक तिवारी।